Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

आचार्य जयदेव कृत चन्द्रालोक में वर्णित गुणस्वरूप

सोनी जायसवाल
शोधच्छात्रा– संस्कृत
गया प्रसाद स्मारक राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय अम्बारी, आजमगढ़।

शोध आलेख सार– काव्यशास्त्रियों ने काव्य के एक आवश्यक तत्त्व के रूप में गुणों की चर्चा की हैं। आत्मा में शौर्यादि के समान काव्य के आत्मभूत तत्त्व रस के धर्म के रूप में गुण की सत्ता को स्वीकार किया है। गुण रस के उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं। गुण की सत्ता रस के आधीन है। गुण स्वतन्त्र रूप से नहीं रह सकते अर्थात् गुण रस के साथ अचल स्थिति में होते हैं और रस में ही रहकर रस के उपकारक होते हैं। आचार्य जयदेव सम्मत ये गुण काव्य की काव्यता को उद्भासित करने वाले हैं। गुण के बिना काव्य की काव्यता कथमपि स्वीकार नहीं की जा सकती है।

मुख्य शब्द– काव्यशास्त्र, जयदेव, चन्द्रालोक, गुण, आत्मा, शौर्य, अलंकार।

प्रायः सभी काव्यशास्त्रियों ने काव्य के एक आवश्यक तत्त्व के रूप में गुणों की चर्चा की हैं। आत्मा में शौर्यादि के समान काव्य के आत्मभूत तत्त्व रस के धर्म के रूप में गुण की सत्ता को स्वीकार किया है। गुण रस के उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं। गुण की सत्ता रस के आधीन है। गुण स्वतन्त्र रूप से नहीं रह सकते अर्थात् गुण रस के साथ अचल स्थिति में होते हैं और रस में ही रहकर रस के उपकारक होते हैं। रस और गुण के सम्बन्ध में अन्वय–व्यतिरेकि हेतु है। 'तत् सत्वे तत् सत्त्वम् अन्वयम्, तदभावे तदभावः व्यतिरेकिः' अर्थात् उसके होने पर उसका होना अन्वय और उसके न होने पर उसका न होना व्यतिरेकि है। जिस प्रकार धूम के होने पर अग्नि का होना अन्वय और धूम के न होने पर अग्नि का न होना व्यतिरेकि है उसी प्रकार रस के होने पर गुण का होना अन्वय और रस के न होने पर गुण का न होना व्यतिरेकि है। इससे स्पष्ट होता है कि रस में गुणों की अवस्थिति नियत है।

जिस प्रकार जगत् में शरीर, अवयवसंस्थान, आत्मा के उत्कर्षक शौर्यादि की कल्पना की गयी है, उसी प्रकार काव्य में भी शरीर, आत्मा, गुण, अलङ्कार, रीति, दोष आदि की कल्पना की गयी है–

'शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्च आत्मा, गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयः अवयवसंस्थानविशेषवत्, अलङ्. काराः कटककुण्डलादिवत् इति ।[1]

गुण की परम्परा आचार्य भरतमुनि से प्रारम्भ होती है। भरतमुनि ने 'दोषविपर्यय' के रूप में गुणों को अभिहित किया है।[2] गुण काव्य के सौन्दर्य के विधायक तत्त्व हैं। इन्होंने अलङ्.कार एवं गुण दोनों को रससंश्रयात्मक माना है। इन्होंने श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता एवं कान्ति नामक दस गुण स्वीकार किये हैं।[3] आगे चलकर आचार्य भामह दस गुणों के स्थान पर 'गुणत्रय' की स्थापना करते हैं– माधुर्य, ओज और प्रसाद।[4] इनके अनुसार ओज में समासबाहुल्य, माधुर्य में श्रव्यत्व तथा अनतिसमस्त्व एवं प्रसाद में अर्थ सुलभत्व एवं समासराहित्व होता है। आचार्य दण्डी ने गुण को अलङ्.कारस्वरूप माना है अर्थात् गुण और अलङ्.कार में कोई विभेद नहीं है। अलङ्.कार की ही भाँति गुण भी काव्य के शोभाधायक तत्त्व हैं। इन्होंने आचार्य भरतमुनिसम्मत दस गुणों को स्वीकार किया है।[5] आचार्य वामन ने सर्वप्रथम गुणों का लक्षण प्रतिपादित किया है। इन्होंने गुण को काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना है और कहा है कि काव्य को काव्यत्व प्रदान करने में गुणों की अनिवार्य भूमिका होती है। इन्होंने स्पष्ट रूप से गुण और अलङ्.कार में विभेद स्थापित करते हुए अलङ्कार को काव्य का अनित्य और गुण को काव्य का नित्य तत्त्व स्वीकार किया है। आचार्य वामन गुणभेद हेतु आचार्य भरतमुनि एवं आचार्य दण्डी के ऋणी हैं। इन्होंने भी आचार्य भरतमुनि एवं आचार्य दण्डी सम्मत दस गुणों को स्वीकार किया है किन्तु इनकी एक नवीन उद्भावना यह रही है कि इन दस गुणों को शब्द गुण एवम् अर्थ गुण के रूप में विभाजित कर गुणों की संख्या बीस स्वीकार की है।[6] इन दस शब्द एवं अर्थ गुणों के नाम तो एक ही हैं किन्तु इनके लक्षण भिन्न हैं।

आचार्य कुन्तक गुणों का मार्ग के साथ समन्वय स्थापित करने का प्रयास करते हैं। मार्ग तीन हैं– सुकुमार, मध्यम और वैचित्र्य।[7] इन तीनों मार्गों में चार–चार गुणों की स्थापना की गयी है– माधुर्य, प्रसाद, लावण्य और आभिजात्य। प्रत्येक मार्ग में इन गुणों के स्वरूप में विभेद होता है। आचार्य आनन्दवर्धन गुण को रसाश्रित मानते हैं।[8] इनके अनुसार गुण काव्य के आत्मभूत तत्त्व रस के धर्म हैं। इन्होंने भामहसम्मत माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीन गुणों का उल्लेख किया है। आचार्य भोज को गुण के विषय में नवीन उद्भावनाओं के लिए जाना जाता है। इन्होंने गुणों के तीन विभाग किये हैं– बाह्य, आभ्यन्तर एवं वैशेषिक। शब्दाश्रित बाह्य, अर्थाश्रित आभ्यन्तर एवं विशेष स्थिति में शोभाधायक सिद्ध होने वाले गुण वैशेषिक कहलाते हैं। शब्द/बाह्य एवम् अर्थ/आभ्यन्तर गुणों की संख्या चौबीस है। नाम तो एक ही हैं किन्तु इनके स्वरूप में अन्तर है। वैशेषिक गुणों के तीन विभाग हैं– पदगत, वाक्यगत एवं वाक्यार्थगत।[9] अग्निपुराण में भी काव्यगुणों के स्वरूप की चर्चा हुई है। इस ग्रन्थ में गुणों की भावात्मक सत्ता स्वीकार की गयी है और आचार्य भरतमुनि स्वीकृत दोषाभावस्वरूप का खण्डन किया गया है। इस ग्रन्थ में गुणों के तीन विभाग किये गये हैं– शब्दगुण (7), अर्थगुण (6) एवं शब्दार्थगुण (6)।[10]

पीयूषवर्ष आचार्य जयदेव ने भी आचार्य भरतमुनि एवं आचार्य दण्डी के मार्ग का ही अनुसरण करते हुए दस गुणों के नाम गिनाते हुए आठ गुणों का लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किया है। शेष दो गुण– कान्ति एवं अर्थव्यक्ति का उल्लेख मात्र किया है, लक्षण एवं उदाहरण नहीं दिया है। इन दोनों गुणों का अन्तर्भाव क्रमशः श्रृंगार रस एवं प्रसाद गुण में किया है–

'श्रृंगारे च प्रसादे च कान्त्यर्थव्यक्तिसंग्रहः।

अमी दशगुणाः काव्ये पुंसि शौर्यादयो यथा'।।[11]

आचार्य जयदेव अभिमत आठ गुण अधोलिखित हैं–

1.श्लेष 2.प्रसाद 3. समता 4. समाधि 5. माधुर्य 6. ओज 7. सौकुमार्य 8. उदारता।

जब काव्य में असम्भव अर्थ का सम्भव वर्णन किया जाता है तब वहाँ पर अर्थ श्लेष नामक गुण होता है और वह श्लेष शब्द जहाँ पर सजातीय शब्दों के प्रयोग से सुखकारी रचना के रूप में हो जाता है, तब वहाँ पर शब्द श्लेष होता है।[12] इस प्रकार आचार्य जयदेव के मत में श्लेष गुण के दो भेद होते हैं। जैसे–

'उल्लसत्तनुतां नीतेऽनन्ते पुलककण्टकैः।

भीतया मानवत्यैव श्रियाश्लिष्टं हरिं स्तुमः'।।[13]

इस पद्य में मानिनी लक्ष्मी द्वारा विष्णु का आलिंगन करना असम्भव है किन्तु शेषनाग के भयरूपी युक्ति द्वारा इसका कथन किया गया है। अतः असम्भव अर्थ का सम्भव रूप में वर्णन करने से यहाँ अर्थ श्लेष है। जबकि 'नीतेऽनन्ते' में अनुप्रास अलंकार के कारण सजातीयता होने से शब्द श्लेष है।

जिस कारण से काव्य में अवस्थित अर्थ स्वच्छ जल में स्थित किसी वस्तु के समान स्वतः उद्भासित हो जाता है, उसे प्रसाद गुण कहते हैं–

'यस्मादन्तःस्थितः सर्वः स्वयमर्थोऽवभासते।

सलिलस्येव सूक्तस्य स प्रसाद इति स्मृतः'।।[14]

प्रसाद गुण का यह लक्षण ही इस गुण का उदाहरण माना जाता हैं, क्योंकि इस गुण लक्षण का अर्थ स्वतः ही उद्भासित हो जाता है।

समासरहित या अल्पसमासयुक्त रचना अथवा वर्णों की समानता होने पर समता नामक गुण होता है। जैसे– 'श्यामला कोमला बाला रमणं शरणं गता'।[15] इस उदाहरण में समासराहित्य एवं म्, ल्, र् तथा ण् वर्णों की समानता होने के कारण समता नामक गुण है।

जिस प्रकार समाधिस्थ योगी चित्तवृत्ति निरोधपूर्वक ब्रह्म साक्षात्कार करता है और उसका शरीर रोमांचित हो उठता है इसी प्रकार प्रकाशमान अर्थ की महिमा से जब सहृदयों का शरीर रोमांचित हो उठता है तो उसे समाधि नामक गुण कहते हैं–

'समाधिरर्थमहिमा लसद्घनरसात्मना।

स्यादन्तर्विशता येन गात्रमंकुरितं सताम्'।।[16]

यह समाधि लक्षण ही लक्षणानुरूप भाव होने से इसका उदाहरण भी है।

जब काव्य में पुनरुक्ति होने पर भी चमत्कारपूर्ण विचित्रता वर्णित होती है, वहाँ पर माधुर्य नामक गुण होता है। जैसे–'वयस्य पश्य पश्यास्याश्चञ्चलं लोचनाञ्चलम्'।[17] इस उदाहरण में 'पश्य पश्य' एवं 'ञ्चलं ञ्चलं' की पुनरुक्ति होने और कामिनी के कटाक्ष का चमत्कारपूर्ण वर्णन होने से माधुर्य नामक गुण है।

वाच्य अर्थ की प्रौढ़ता अथवा विस्तृत अर्थ के संक्षेपीकरण को ओज गुण कहते हैं। जैसे– 'रिपुं हत्वा यशः कृत्वा त्वदसिः कोशमाविशत्'।[18] इस उदाहरण में शत्रुवध, यशवर्द्धन आदि विस्तृत कथांशों का संक्षेप में वर्णन होने से ओज नामक गुण है।

जहाँ पर पर्यायवाची शब्द रख देने से परुषता का अभाव हो जाता है, वहाँ पर सौकुमार्य नामक गुण होता है। जैसे– **'स कथाशेषतां यातः समालिङ्.ग्य मरुत्सखम्'।[19]** इस उदाहरण में 'मृतो यातः' के स्थान पर 'कथाशेषतां यातः' रख देने से परुषता का अभाव हो गया है।

चतुरतापूर्वक कही गयी बात उदारता नामक काव्यगुण कहलाता है। जैसे– 'मानं मुञ्च प्रिये किञ्चिचल्लोचनान्तमुदञ्चय'।[20] इस उदाहरण में 'विलोकय' के स्थान पर उदञ्चय' पद रख देने से ग्रामत्व दोष का परिहार हो जाता है और विदग्धता की प्रतीति होती है। अतः यहाँ पर उदारता नामक काव्यगुण है।

आचार्य जयदेवसम्मत ये गुण काव्य की काव्यता को उद्भासित करने वाले हैं। गुण के बिना काव्य की काव्यता कथमपि स्वीकार नहीं की जा सकती है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

1. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण– 1/2 के बाद का गद्य।
2. आचार्य भरतमुनि, नाट्यशास्त्र– 17/94
3. आचार्य भरतमुनि, नाट्यशास्त्र– 17/96
4. आचार्य भामह, काव्यालङ्.कार– 2/1
5. आचार्य दण्डी, काव्यादर्श– 1/41–42
6. आचार्य वामन, काव्यालङ्.कारसूत्रवृत्ति– 3/1/4, 3/2/
7. 'सम्प्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः।
   सुकुमारो विचित्रस्य मध्यमश्चोभयात्मकः'।।
   आचार्य कुन्तक, वक्रोक्तिजीवित– 1/24
8. आचार्य आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक– 2/6
9. आचार्य भोज, सरस्वतीकण्ठाभरण– 1/58–65
10. अग्निपुराण– 346/4
11. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/10
12. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/01
13. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/02
14. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/03
15. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/04
16. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/05

17. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/06

18. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/07

19. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/08

20. आचार्य जयदेव, चन्द्रालोक– 4/09